शब्द विचार

• डॉ. धन्नालाल जैन

सुह - प्राचीन जैन साहित्य में सुह शब्द शुभ और सुख का अपभ्रंश है। अनेक स्थानों पर 'सुह' शब्द का अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो पाता है। शुभ शब्द में शु का सु हो गया तथा भ की अल्प प्राण ध्वनि का लोप हो कर शेष 'ह' महाप्राण ध्वनि रही। सुख शब्द में ख की अल्प प्राण ध्वनि का लोप शेष महाप्राण ध्वनि 'ह' रही। शुभ और सुख दोनों का 'सुह' रूप हो गया। अर्थ लगाने के लिए संदर्भ देखना पड़ता है। सुह कम्म अर्थात शुभ कर्म, सुह-निलअ-सुख-णिलय अर्थात सुख का घर। सुख का घर-तीर्थंकर।

सूर - प्राचीन जैन साहित्य में शूर और सूर्य का अपभ्रंश रूप सूर मिलता है। सूर (शूर) वीर के अर्थ में भी है और सूर सूर्य के अर्थ में भी है। सूर्य शब्द में से 'य' का लोप होने से सूर बना। सूरकांति का अर्थ सूर्य की कांति भी हो सकता है। तपस्वी शूर की कांति से भी मण्डित होते हैं और सूर्य की कांति से भी मण्डित होते हैं। एक तपस्वी, संसारी कर्मों से युद्ध भूमि के वीर की तरह लड़ता है, यह अर्थ भी सही है और एक तपस्वी अपनी तपस्या से सूर्य की कांति से मण्डित होता है, यह अर्थ भी सही है।

सिय - श्री सीता और श्वेत शब्दों का जैन साहित्य में 'सिय' शब्द रूप आया है। श्री, लक्ष्मी, शोभा, सीता आदि के लिये 'सिय' शब्द प्रयुक्त होने से अर्थ में बाधा उत्पन्न होती है तथा किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं। सिय जोय का अर्थ लक्ष्मी दर्शन भी हो सकता है और सीता-दर्शन भी हो सकता है। राम-कथा का महत्व जैन-दर्शन साहित्य में होने से, एक अर्थ विचार पर नहीं पहुँचा जा सकता है। सिय शब्द विशेषण के रूप में आने पर तो अर्थ श्वेत स्पष्ट हो जाता है।

सुर - सुर (देव) और सुरा के लिये 'सुर' रूप ही आया है। सुशंद सुरानंद का अर्थ देवों का आनंद भी है और सुरा (मदिरा) का आनंद भी हैं। जैन साहित्य की दृष्टि से तो हम सुरांद का अर्थ, देवों का आनंद लगा रहे हैं। पर सुरांद का अर्थ सुरा (मदिरा) का आनंद भी है। रीतिकालीन साहित्य में सुरांद का अर्थ सुरा का आनंद ही लगेगा।

सम्मत्त - सम्यक्त्व और सुमति का प्राचीन जैन साहित्य के 'सम्मत्त' शब्द रूप मिलता है। सुम्मत्त अर्थात सुसम्मत अर्थात सम्यगदर्शन। सम्यगदर्शन से ही जीव मोक्ष का अधिकारी होता है। मोक्ष, जैन-दर्शन का मूल है। तीर्थंकर आदि मोक्ष-गामी हैं। मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होने में भी सुख है। सुख और दुख भाव-वाचक संज्ञा होने से अति-सूक्ष्म भाव हैं। सुख और दुख मन की स्थितियाँ भी है, जो परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। एक जीव के लिये जो स्थिति सुख देने वाली होती है वही दूसरे जीव के लिये दुख देने वाली भी होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छव्वासय - षडावश्यक का अपभ्रंश छव्वासय शब्द रूप बना है। षड का छः और विसर्ग का घ तथा क को लोप होने से बना छव्वासय। सामायिक, स्तुति वंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग ये षडावश्यक होते हैं। एक जैनी के लिये ये षडावश्यक आवश्यक हैं।

कुदंसण - कुदर्शन का अपभ्रंश कुदंसण है। कु उपसर्ग है। दर्शन का दंसण हो गया। न का जैन साहित्य में ण हो जाता है। नमो का णमो। कुदर्शन अर्थात् मिथ्यात्व या मिथ्यादर्शन। एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पाँच कुदर्शन हैं। कुदंसण का पर्याय तम भी है।

आउक्कम - आयु कर्म का अपभ्रंश में आउक्कम होता है। आयु कर्म चार प्रकार के हैं - देवायु, मनुष्यायु, नरकायु और तिर्यञ्चायु । देवायु सर्वश्रेष्ठ है।

खाइय दंसण - क्षायिक दर्शन का अपभ्रंश में खाइय दंसण होता है। क्ष का ख, यि में से य का लोप, क का लोप और य श्रुति। दर्शन का दंसण। क्षायिक दर्शन, सम्यग्दर्शन का भेद है। कर्म के क्षय होने से क्षायिक। कर्म का क्षय आचार और विचार से संभव है। विचार के बिना आचार संभव नहीं है। विचार, अगर आचार में नहीं आता है तो वह विचार व्यर्थ है। मनुष्य बिचारशील होने से, विचार अधिक करता है। आज के वैज्ञानिक युग में, जहाँ भौतिक उन्नति, अपनी चरम सीमा पर है 'खाइय दंसण' का सर्वाधिक महत्व हैं।

जिण - इंद्रियों पर विजय पाने वाला जिण। 'जिण' से बना जैन। आज जैन शब्द एक धर्म-विशेष के अर्थ में संकुचित हो कर रह गया है। वास्तव में जो भी अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करता है, वही जैन है। जैन एक व्यापक शब्द है। जिण शब्द अपने आदिकाल में विशेषण था, पर आज संज्ञा है। जिण (जैन) अब एक धर्म भी है और दर्शन भी। जिण (जैन) धर्म और दर्शन का अनुसरण, व्यक्ति को बहुत ऊँचा उठाकर सुख प्रदान करता है। यह सुख आध्यात्मिक होता है। शारीरिक सुख क्षणिक होता है, इस कारण जैन-धर्म-दर्शन में इसका महत्व नहीं है।

तीर्थंकर - तीर्थंकर शब्द का अर्थ है - तीर्थ करने वाला। तीर्थ और अंकर से मिलकर बना तीर्थंकर। तीर्थ अर्थात् पवित्र, शुद्ध। जो केवल ज्ञान प्राप्त कर लोगों को तीर्थ (पवित्र, शुद्ध) करे, वह तीर्थंकर। जैन धर्म में चौबिस तीर्थंकर हुए हैं। केवली तो अनेक हुए हैं, पर वे केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गामी हो गये, इसलिये तीर्थंकर नहीं बने। अगर अन्य केवली भी लोगों को तीर्थ बनाते तो वे भी तीर्थंकर कहलाते। वे जैनों के शीर्ष हैं। तीर्थंकरों ने अति-उच्च तपस्या, त्याग कर मानवता को गरिमा प्रदान की है । तीर्थंकरों का त्याग और तपस्या, विश्व में अद्वितीय है। कठोर तपस्या जो यहाँ हैं, वह कहाँ? त्याग का सुख जो तीर्थंकरों ने भोगा है, वह सुख आज तक अन्य कोई नहीं भोग सका।

पुण्णपाव - पुण्य और पाप से मिलकर बना पुण्यपाप और अपभ्रंश में पुण्णपाव। जैन दृष्टि से जीव कल्याण के मार्ग में हितकर कार्य पुण्य और अहितकर कार्य पाप होते हैं। पुण्य और पाप भाव वाचक संज्ञाएँ हैं। जैन धर्म में तो भाव-हिंसा भी पाप है। कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों के पुणपाव रूप भी आया है।

सुवझाण - शुभ ध्यान का अपभ्रंश में सुवझाण होता है। श का स, भ का लोप और व श्रुति, ध्या का झा तथा न का ण। आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार ध्यान माने गये हैं। आर्त्त और रौद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान अशुभ-ध्यान हैं तथा धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान हैं। जीव और संसार के स्वरूप का विचार धर्म-ध्यान और समाधि-रूप से आत्म-चिंतन शुक्ल ध्यान माना गया है।

तत्त - तत्व का प्राकृत-अपभ्रंश में तत्त होता है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष जैन-धर्म में सात तत्व माने गये हैं। जैन दर्शन में इन सात तत्वों का सोच ही 'तत्व चिंतन' कहलाता है। तत्व चिंतन बड़ा ही वैज्ञानिक सोच है। जीव को अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। जीव की गति मोक्ष है। पर जब तक मोक्ष नहीं तब तक जीव दुःख भोगता ही रहेगा।

प्राकृत - अपभ्रंश जैन साहित्य बहुत विशाल है। जैन-दार्शनिक-शब्दावालियों का सही-सही शुद्ध पाठ और अर्थ नहीं होने से, जैन-साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। इस क्षेत्र में हमारे विद्वानों ने अथक परिश्रम से बहुत काम किया है। पर सर्व सम्मत पाठ और अर्थ आज भी उपलब्ध नहीं है। हम यह भी निर्धारित नहीं कर सके है कि णमोकारमंत्र सही है या नवकारमंत्र सही है। णमोअरहंताणं है तो कहीं णमोअरिहंताणं है। विद्वानों को चाहिए, वे एक सर्व-सम्मत पाठ और अर्थ निर्धारित कर दें।

८६, तिलक पथ,
इंदौर (म.प्र.)

सच्चा साधक या महापुरूष वही कहला सकता है जो दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानता है। दुसरों की विपदाओं को अपनी विपदा समझता है और दुसरों के घात को अपने मर्मान्तक दुःख का कारण मानता है। अनेक वर्षों तक तपस्या करके देह को सुखाने की अपेक्षा एक प्राणा के जीवन का रक्षण करतना अधिक महत्व पूर्ण है। जिसके हृदय में ऐसी भावनाएँ है वह स्वयं अपना तथा औरों का कल्याण कर सकता हैं तथा अनन्त सुख का स्हायी बन सकता है। ऐसा दिव्यक्त्या पुरूष ही अपने जन्म-जन्मान्तरों का क्रम रोक कर मय भ्रमण सो छुटकारा तपा सकता है।

युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org